विज्ञानं ज्ञानपूर्वकम्

गोपीनाथ पारीक गोपेश
अध्यक्ष
राजस्थान आयुर्वेद विज्ञान परिषद्

वेदों से ही भारतीय वाङ् मय की उत्पत्ति मानी है। भारतीय वाङ् मय में दर्शनों का विशेष महत्त्व है क्योंकि इनमें भारतीय संस्कृति के रूपमें जीवन के प्रति मानवीय दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। भारतीय आस्तिक दर्शनों में वेदान्त का अपना विशेष महत्त्व है, क्योंकि यह वेद के ज्ञान-विज्ञान को व्याख्यादित करता है। ऋग्वेद के सूक्तों मं ही ब्रह्म और माया के सम्बन्धों की सूचनायें मिलती है। फिर भी वास्तविक वेदान्त तो वेद के अन्तिम भाग उपनिषदों से प्रारम्भ होता है, जहाँ ब्रह्म, माया और जीव के विषय में विशिष्ट कल्पनायें कर विषय को प्रामाणिक सिद्ध करने का प्रयास किया गया है जो वस्तुतः स्तुत्य एवं सत्य की संचेतना से संयुक्त लगता है। यद्यपि ये उपनिषद् अनेक हैं किन्तु आदिशंकराचार्य ने इनमें ग्यारह उपनिषदों को मान्यता दी है। यह हमारा सौभागय है कि गीताप्रेस ने इन ग्यारह उपनिषदों के सटीक संस्करण सम्पादित कर प्रसारित किये हैं। इन उपनिषदों में वेन्दान्त का बोध मुख्य रूप से होता है। उपनिषदों का सारांश भगवद् गीता में आ गया है अतः इसे भी वेन्दान्त दर्शन का अंग ही माना गया है। उपनिषद् और गीता के इन्ही विचारों को बादराण वेदव्यास देव ने ब्रह्मसूत्र में श्रृंखलाबद्ध किया है। उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र ये तीनों प्रस्थानत्रयी के नाम से जाने जाते हैं जिन पर प्रायः प्रत्येक वैष्णव आचार्यों ने अपने अपने मत के अनुसार भाष्य लिखे हैं। निम्बाकीचार्य ने इनमें भागवतमहापुराण को सम्मिलित कर प्रस्थान चतुष्टय नाम दिया है और चैतन्य महाप्रभु ने भागवत्, गीता और ब्रह्मसूत्र को ही प्रस्थानत्रयी की श्रेणी में रखा है। वेदों में तीन विषयों का वर्णन है, ये विषय है- कर्म, ज्ञान और उपासना। वेदों में मुख्यतया कर्मकाण्ड वर्णित है, तो उपनिषदों में ज्ञानकाण्ड है और उपासनाकाण्ड से दानों ही अनुस्यूत है। वेदान्त की विश्लेषणमयी परिभाषा में कहें तो ब्रह्म ही ज्ञान है और माया ही विज्ञान है।

आदिशंकराचार्य न प्रस्थानत्रयी पर व्याख्या लिखकर अपने अद्वैतमत का प्रवर्तन किया। 'ब्रह्मसूत्र' पर लिख इनका भाष्य 'शारीरिक भाष्य' के नाम से प्रसिद्ध है जिसने अद्वैत वेदान्त की पताका फहरा दी। कुमारिलभट्ट

की सम्मति के अनुसार शंकराचार्य ने वाचस्पति मिश्र से इस शारीरिक भाष्य पर टीका लिखवायी जो 'भामती' नाम से जानी जाती है। इस भामती पर भी अमलानछ ने 'कल्पतरू' तथा अप्पय दीक्षित ने 'परिमल' नामक टीकायें लिखी। इस शंकराचार्च (अद्वैतवेदान्तदर्शन) पर लिखे गये मधुसूदन सरस्वती का 'अद्वैत-सिद्धि', सदानन्द का 'वेदान्तसार' आदि ग्रन्थ भी प्रसिद्ध हैं, जिनमें इस ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित बहुत सी चर्चायें की गयी हैं। वेदों के भाष्कार सायणाचार्य के अग्रज भ्राता माधवाचार्य (जो सन्यास के पश्चात् विद्यारण्य नाम से विख्यात हुये) ने तो 'सर्वदर्शनसंग्रह' नाम विशाल ग्रन्थ लिखकर अन्त में शंकर के अद्वैतदर्शन की ही पुष्टि की है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत यही सिद्ध किया गया है कि ब्रह्म ही ज्ञानरूप है तथा उसकी माया विज्ञानस्वरूपा है। ब्रह्म का स्वरूपलक्षण ही यही है - सत्य, ज्ञान और आनन्द। जगत् के जन्मादि का कारण होना शुद्ध ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है क्योंकि ब्रह्म माया से विशिष्ट होने पर ही यह काम करता है।

प्रत्येक हृदय में ब्रह्म निवास करता है तो यह दृष्टि ही ज्ञान है। ब्रह्म और ज्ञान पर्याय ही हैं। ब्रह्म अपनी 'बहुस्याम्' कामना की पूर्ति के लिये ही वह माया का सहारा लेता है। माया के अन्दर ऊर्जा है वह ब्रह्म से ही प्राप्त होती है। ब्रह्म ऊर्जा है तो माया पदार्थ है, ब्रह्म ज्ञान है तो माया विज्ञान है। प्रो. श्री सिद्धेश्वर प्रसाद ने एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा था, जिसका नाम है-'ब्रह्मविज्ञानोपनिषद्' जो सर्वसेवासंघा प्रकाशन वाराणसी से सन् 1982 में प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ की भूमिका में लेखक लिखते हैं - 'ब्रह्मविज्ञानोपनिषद्' श्रुति (ब्रह्मविज्ञान), स्मृति (समाजविज्ञान) और विज्ञान (भौतिक विज्ञान) की साधना की त्रिवेणी है। इसके बिना सम्पूर्ण जीवन के पूर्ण शास्त्र या पूर्ण 'भावोद्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाद्वैतं न कर्हिचित्' कथन पर पुनर्विचार आवश्यक है। इसी ग्रन्थ के सूत्र 'इत्थं समाज रचना ब्रह्मविज्ञानपुष्टिः' की व्याख्या में विद्वान् लेखक लिखते हैं- वेदान्तदर्शन रूप बदलने को माया का धर्म मानता है। इस माया के प्रभाव को नियंत्रित करने पर ही नये समाज की रचना संभव है, जिसमें नये मानव का प्रादुर्भाव हो सके। यह केवल ब्रह्मविद्या या केवल भौतिक विज्ञान की साधना से संभाव नहीं है। इसके लिये दानों की सह-साधना अनिवार्य है। भौतिकविज्ञान नये मानव के प्रादुर्भाव की भौतिक बाधाओं को दूर करेगा और ब्रह्मविद्या मनोवैज्ञानिक एवं मानसिक बाधाओं को दूर करेगी।

अमरकोष में ज्ञान-विज्ञान की परिभाषा हेतु कहा है - 'मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः' (5-6)। अर्थात् मोक्ष में निरत बुद्धि का नाम ज्ञान है और अन्यत्र (मोक्षोपयोगि बुद्धि को छोड़कर) शिल्प (कारीगरी) और शास्त्र में लगने वाली बुद्धि का नाम विज्ञान है। अन्य कई विद्वान शास्त्रीय ज्ञान को 'ज्ञान' तथा अनुभवजन्य ज्ञान को 'विज्ञान' नाम देकर दोनों के सामंजस्य की बात करते हैं। शंकराचार्य ने भी गीताभाष्य में शास्त्र तथा गुरुओं से

प्राप्त ज्ञान को ज्ञान तथा सीखी हुई वस्तुओं के व्यक्तिगत अनुभव को विज्ञान कहा है। 'अखण्डज्योति' नामक पत्रिका में इन्हें परा और अपना विद्या कहा है तथा कहा है कि ज्ञान विज्ञान की ये दो धारायें एक ही वृक्ष की दो टहनियाँ हैं। ये परस्पर दूध-पानी की तरह मिल सकती है। आत्मकलयाण के लिये ऐसा आवश्यक भी माना गया है (अगस्त 1991)। अतएव गोपालसहस्रनाम (139) में भगवान् श्रीकृष्ण को 'विज्ञान-ज्ञानसन्धान' कहा गया है। बिना ज्ञान के विज्ञान अन्धा है तो बिना विज्ञान के ज्ञान पंगु है। गीता के सप्तम अध्याय का तो नाम ही 'ज्ञानविज्ञानयोग' ही है। इस ज्ञान-विज्ञान की व्याख्या 'साधकसंजीवनी' में रामसुखदासजी महाराज इस प्रकार करते हैं- 'परा तथा अपरा प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है-यह ज्ञान है और परा-अपरा सब कुछ भगवान् ही है - यह विज्ञान है। अतः अहं सहित सब कुछ भगवान् ही है - यही विज्ञान सहित ज्ञान है। इस ज्ञान में अखण्ड रस है, पर 'विज्ञान' में प्रतिक्षण वर्धमान रस है, क्योंकि विज्ञान समग्रता का वाचक है। समग्रता का तात्पर्य यह है कि जड़-चेतन, सत्-असत्, परा-अपरा, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ आदि जो कुछ भी है, वह सब भगवान् का ही स्वरूप है।

परमहंस श्री अगड़ानन्दजी ज्ञान-विज्ञान की यह परिभाषा प्रस्तुत करते हैं-'परमतत्त्व परमात्मा की प्रत्यक्ष जानकारी का नाम ज्ञान है और महापुरुष को एक साथ सर्वत्र कार्य करने की जो क्षमता मिलती है, वह विज्ञान है। उसकी इस उत्तम कार्यप्रणाली को ही विज्ञान कहते हैं।'

रामानुजाचार्य ने अपने गीताभाष्य में लिखा है कि -यहाँ ज्ञान और विज्ञान शब्दों का अभिप्राय वेदान्त के ज्ञान और सांख्य के विस्तृत ज्ञान से है। शंकराचार्य ने ज्ञान की व्याख्या करते हुये इसे शास्त्रों और गुरुओं से प्राप्त आत्मा तथा अन्य वस्तुओं का ज्ञान और विज्ञान को इस प्रकार सीखी हुई वस्तुओं का व्यक्तिगत अनुभव बताया है। रामानुज की दृष्टि में ज्ञान का सम्बन्ध आत्मस्वरूप या आत्मा की प्रकृति से है और विज्ञान का सम्बन्ध आत्मविवेक या आत्मा के विभेदात्मक ज्ञान से है। यहाँ पर दिये गये अनुवाद में ज्ञान को आध्यात्मिक ज्ञान और विज्ञान को तार्किक ज्ञान माना गया है। श्रीधर ने इन दोनों व्याख्याओं का समर्थन किया है। - डॉ. राधाकृष्णन्

आयुर्वेद के आचार्य चरक ने भी स्थान स्थान पर ज्ञान और विज्ञान की चर्चा की है। विमानस्थान के परिषद् के प्रसंग में ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न विद्वानों की परिषद् को ज्ञानवती परिषद् कहा है। यहाँ ज्ञान से विवेकपूर्ण शास्त्रीय ज्ञान तथा विज्ञान से विशिष्ट ज्ञान या अनुभव पूर्ण ज्ञान का ग्रहण किया है। चिकित्सा में इन दोनों की अनिवार्यता सिद्ध की गयी है। जैसे जैसे शास्त्रीय ज्ञान व्यवहार में आता जाता है वैसे वैसे अनुभव के विज्ञान में वृद्धि होती जाती है। मनुस्मृति का यह श्लोक स्मरण रखने योग्य है-

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते।। - मनुस्मृति 5-27

मानस रोगों के उपचार में ज्ञान-विज्ञान का विशेष महत्त्व है। आयुर्वेदीय जगत् के मान्य विद्वान् प्रो. श्री रामहर्ष सिंह का यह वक्तव्य इस प्रसंग में बड़ा उपयोगी होगा - वस्तुतः भारतीय दार्शनिक तत्त्व ज्ञान के उपरान्त तत्त्वानुभूति के लिये तत्पर रहते थे। वे केवल तत्त्व ज्ञान मात्र से संतुष्ट नहीं रहते थे। आचार्यो ने ज्ञान तथा ज्ञान की अनुभूति जिसे विज्ञान भी कहा गया है में सर्वदा भेद किया है। श्री शंकराचार्य ने स्वयं ज्ञान-विज्ञान का अन्तर स्पष्ट करते हुये कहा है कि ज्ञान का तात्पर्य है शास्त्रों से या आचार्यों से आत्मा आदि पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करना और विज्ञान का अर्थ है उस ज्ञात पदार्थ का उसी रूप में स्वयं अनुभव करना। इस प्रकार की स्वानुभूमि सदा आनन्दमय मानी जाती है। ऋषियों ने इसी अनुभूति के लिये योग विज्ञान का आविष्कार किया । कभी कभी योग शब द से भी वही अर्थ लिया जाता है, जो विज्ञान शब्द से यहाँ लिया गया है। श्री शंकराचार्य की भाषा में अनुभवयुक्त ज्ञान ही विज्ञानसहित ज्ञान है और वही योग है - 'विज्ञानसहितं स्वानुभवसंयुक्तम्' (गीता शांकर भाष्य)। भारतीय परम्परा का लक्ष्य ज्ञान प्राप्ति मात्र नहीं अपितु विज्ञान प्राप्ति भी है। गीता में विज्ञान सहित गुह्यतम ज्ञान को मोक्ष का साधन बताया गया है -

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवल्ख्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।। -गीता 9-1

अर्थात् हे अर्जुन! तुझ दोष दृष्टि रहित भक्त के लिये इस परम गोपनीय विज्ञानसहित ज्ञान को पुनः भली भाँति कहूँगा, जिसके जानकर तू दुःखरूप संसार से मुक्त हो जायेगा। -आयुर्वेदीय मानस विज्ञान

ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धित बहुत से प्रसंग आकर-ग्रन्थों में हमें देखने को मिलते हैं, उन सबका प्रसंग के अनुसार तात्पर्य समझ लेना चाहिये। इस सम्बन्ध में सर्वाधिक उपयोगी ग्रन्थ श्रीमद् भगवद् गीता है। अतः 'गीता सुगीता कर्तव्या'। कहते हैं कि परमाणु बम के जनक अमरीकी वैज्ञानिक ओपेनहाइमर को भी इस भगवद् गीता से ही शान्ति - समाधान मिला था।

गीता को पढ़ने के लिये उन्होंने पहले संस्कृतभाषा का ज्ञान प्राप्त किया था। तब ही तो हमारे पूज्य गुरुवर्य आचार्य डॉ. श्री नारायण जी शास्त्री काङ्कर कहा करते थे-

अष्माकं भारतीयानां, यदधीनाऽस्ति संस्कृतिः।
सा भाषा संस्कृतं सर्वैः, पठनीया सदा जनैः।।

शुभं भूयात्।